जनसत्ता

मंदी की मार

अब खुद सरकारी आंकड़ों से जाहिर हो गया है कि अर्थव्यवस्था की स्थिति चिंताजनक है। लंबे समय से अर्थशास्त्री चर्चा कर रहे थे कि अर्थव्यवस्था की हालत ठीक नहीं है। इसे लेकर कई सुझाव भी आ रहे थे। अंतरराष्ट्रीय रेटिंग एजेंसी मूडीज ने भी कुछ दिनों पहले बताया था कि भारत की अर्थव्यवस्था ठीक नहीं है और अगले चार सालों तक इसके सुधरने की कोई सूरत नजर नहीं आती। राजकोषीय घाटा बढ़ने के आंकड़े भी इस चिंता को गहराने लगे थे। मगर सरकार यह मानने को तैयार नहीं थी। खुद वित्तमंत्री ने कहा कि आर्थिक वृद्धि दर में कुछ सुस्ती जरूर आई है, पर यह मंदी का दौर नहीं है। अब खुद राष्ट्रीय सांख्यिकी संगठन ने बताया है कि चालू वित्त वर्ष की दूसरी तिमाही में सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी नीचे खिसक कर साढ़े चार फीसद पर पहुंच गई है। यह पिछले छह सालों का सबसे निचला स्तर है। चालू वित्त वर्ष की पहली तिमाही में भी जीडीपी पांच फीसद पर थी। अर्थव्यवस्था के इस स्थिति में पहुंचने की वजह विनिर्माण, औद्योगिक उत्पादन, कृषि, मत्स्य पालन आदि क्षेत्रों में सुस्ती और बिजली, डीजल आदि की खपत घटना बताया जा रहा है। अर्थव्यवस्था के इस स्तर पर पहुंच जाने से सरकार के सामने कई मुश्किलें खड़ी हो गई हैं। यह केवल विपक्षी दलों के हमलों से पार पाने का मामला नहीं है, बल्कि इसके चलते अनेक जनकल्याणकारी योजनाएं बुरी तरह प्रभावित होंगी और अंतरराष्ट्रीय बाजार में भारत की स्थिति और कमजोर होगी।

हालांकि सरकार का दावा है कि वह जल्दी ही इस स्थिति से पार पा लेगी। सरकार का लक्ष्य भारतीय अर्थव्यवस्था को पचास अरब डॉलर तक पहुंचाना है, पर अर्थव्यवस्था के इस स्तर पर पहुंच जाने से वह लक्ष्य बहुत दूर हो गया है। पहले ही विनिवेश की दर घट चुकी है, उसमें जीडीपी के लुढ़कने से इसके बढ़ने की संभावना काफी क्षीण हो गई है। विदेशी बैंक जीडीपी को ध्यान में रख कर ही कर्ज उपलब्ध कराते हैं, सो वहां भी कठिनाई आएगी। राजकोषीय घाटे को पाटना बड़ी चुनौती है, तिस पर जनकल्याणकारी योजनाओं को चलाए रखने के लिए सरकार को और कर्ज लेने पड़ेंगे, जो खासा जटिल हो सकता है। सरकार पहले ही रिजर्व बैंक से अपना लाभांश तय मात्रा से अधिक निकाल चुकी है, इसलिए वहां से कुछ सहारा मिलने की गुंजाइश भी नहीं बची है। कई बार बैंक दरों में कटौती करके बाजार की सेहत सुधारने के प्रयास हो चुके हैं, पर उसका भी कोई उल्लेखनीय असर नजर नहीं आया। ऐसे में जरूरत है कि सरकार पिछली गलतियों की समीक्षा करते हुए नए सिरे से रणनीति तय करे, तो शायद स्थिति में कुछ सुधार हो।

औद्योगिक उत्पादन, विनिर्माण, खनन, बिजली उत्पादन आदि क्षेत्रों में मंदी की वजहें साफ हैं कि लोगों के पास पैसे की कमी है, जिसकी वजह से उन्होंने खपत पर अंकुश लगा दिया है। पिछले साल से ही वाहन उत्पादन का क्षेत्र सुस्त पड़ा हुआ है। बाजार का रुख ढीला है। आम उपभोक्ता वस्तुओं की बिक्री पर भी काफी असर पड़ा है। इसलिए जब तक लोगों की क्रयशक्ति नहीं बढ़ती, तब तक इन क्षेत्रों की सुस्ती नहीं टूटेगी। क्रयशक्ति बढ़ाने के लिए रोजगार सृजन के मोर्चे पर व्यावहारिक ढंग से काम करना होगा। कृषि क्षेत्र की दुर्दशा दूर करने के लिए कठोर परिश्रम की जरूरत है। देखना है, वह अर्थव्यवस्था की सुस्ती तोड़ने के लिए क्या रणनीति बनाती है।

किसका समाज

तेलंगाना के हैदराबाद में बीते बुधवार की रात एक पशु चिकित्सक युवती के सामूहिक बलात्कार और हत्या के बाद उसे जिंदा जला देने की घटना ने एक बार फिर समूचे देश को झकझोर दिया है। दूसरी ओर, इसके ठीक एक दिन पहले झारखंड के रांची में व्यस्त सड़क से बारह लोगों ने एक युवती का अपहरण कर सामूहिक बलात्कार किया। दोनों घटनाओं के बाद सक्रिय हुई पुलिस ने सभी आरोपियों को गिरफ्तार कर लिया है। लेकिन सवाल है कि पुलिस की सुरक्षा व्यवस्था किस हालत में थी कि आरोपियों को बलात्कार जैसे जघन्य अपराध को अंजाम देने में भी कोई हिचक नहीं हुई? हैदराबाद की घटना के संबंध में आई खबर के मुताबिक सड़क किनारे खड़ी की गई युवती की स्कूटी को पहले पंचर कर दिया गया। फिर मदद के बहाने वहां आए चारों आरोपियों ने युवती का सामूहिक बलात्कार किया और वहां से चालीस किलोमीटर दूर ले जाकर पेट्रोल डाल कर जला दिया। सवाल है कि एक टोल प्लाजा के पास से शुरू हुई यह समूची घटना कितनी देर तक सड़कों के आसपास ही घटती रही और उस दौरान पुलिस किस मोर्चे पर सक्रिय थी?

करीब सात साल पहले दिल्ली में जब एक पैरामेडिकल छात्रा का सामूहिक बलात्कार और हत्या की घटना हुई थी, उस समय समूचे देश में इस अपराध के खिलाफ एक बड़ा आंदोलन खड़ा हो गया था। तब इस मसले पर गठित जस्टिस जेएस वर्मा समिति की सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए महिलाओं के विरुद्ध यौन हिंसा पर कानूनों को और सख्त बनाया गया। कई राज्यों में छोटी बच्चियों से बलात्कार के दोषियों को फांसी तक के कानूनी प्रावधान किए गए हैं। लेकिन तमाम कानूनी सख्ती के बावजूद इस अपराध पर काबू पाने की कोशिशें लगभग नाकाम दिखती हैं। इसी साल जुलाई में आई खबर के मुताबिक छह महीने में चौबीस हजार से ज्यादा बच्चियों के बलात्कार की घटनाएं सामने आ चुकी हैं। दरअसल, एक गंभीर सामाजिक समस्या के रूप में बलात्कार के खिलाफ विचार और कानूनी पहलकदमियों की कमी नहीं रही है। लेकिन बलात्कार जैसे बेलगाम अपराध अपने आप में यह बताने के लिए काफी हैं कि एक ओर हमारा समाज स्त्रियों के प्रति अपेक्षित स्तर तक सभ्य और संवेदनशील नहीं हो सका है और दूसरी ओर सत्ता और प्रशासन इस मसले से निपटने में लगभग नाकाम रहे हैं।

यह बेवजह नहीं है कि तमाम सामाजिक चिंताओं और कानूनी कवायदों के बरक्स आज भी घर की दहलीज से बाहर निकलना महिलाओं को खौफ से भर देता है या फिर वे लगातार एक अनजान आशंका से गुजरती रहती हैं। हालांकि घर की चारदिवारी के भीतर वे कहां खुद को सुरक्षित महसूस करती हैं! अनेक अध्ययन रिपोर्टों में यह उजागर हो चुका है कि बच्चियों से लेकर महिलाओं तक के यौन उत्पीड़न के ज्यादातर आरोपी उनके परिचित या संबंधी भी होते हैं। सवाल है कि जब घर के भीतर भी बच्चियां और महिलाएं असुरक्षित हैं तो बाहर एक ही तरह की मानसिकता वाले पुरुष समाज के बीच उनके महफूज होने की उम्मीद कैसे की जा सकती है! क्या केवल कानूनी सख्ती से इस अपराध पर काबू पाया जा सकता है? जब तक सामाजिक विकास में पितृसत्तात्मक ग्रंथियों से बच्चों को मुक्त करने और स्त्री के अधिकारों का सम्मान करने की योजना पर केंद्रित विकास नीतियां लागू नहीं की जाएंगी, तब तक पुरुषों के भीतर की कुंठाएं महिलाओं के खिलाफ त्रासद घटनाओं को अंजाम देती रहेंगी!

कल्पमेधा

विश्व की सारी सेनाएं मिल कर इतने लोगों
और इतनी संपत्ति को नष्ट नहीं करतीं,
जितनी नशे की आदत।
– मिल्टन

कितने बोझ हैं पालतू पशु

भगवती प्रसाद डोभाल

बढ़ती शहरी आबादी के घनत्व को थामना आज मुश्किल हो गया है। फिर पशुओं पर किसी का ध्यान नहीं है। जबकि वे हमारे भोजन और रहन-सहन में सहायक हैं। हम अपने बीच पशुपालन में एक संतुलन नहीं बना पा रहे हैं। किसी-किसी क्षेत्र में अतिरिक्त उत्पादन हो रहा है, जिसका हम निर्यात कर सकते हैं। उस पर भी ठोस योजना का अभाव है। पालतू पशुओं को चारा-पानी उपलबध करा कर उनके स्वास्थ्य को बना कर ही उनकी संतति से लाभ पा सकते हैं। यह एक जीवन चक्र है, इसको नियमित बना कर ही विकास की सही राह पर चला जा सकता है।

आज भारत की आबादी लगभग एक अरब पचीस करोड़ से ज्यादा है। इसे दूध की आवश्यकता है, शरीर ढकने के लिए गरम कपड़े चाहिए। आर्गेनिक खेती को बढ़ावा देने के लिए कंपोस्ट खाद की जरूरत है, जो हमारी पारंपरिक खेती के लिए इस्तेमाल होती है। वह भी पशुओं से प्राप्त होती है। प्रोटीन की कमी को पूरा करने के लिए पशुओं का मांस खाया जाता है। यानी पशु हमारे जीवन के अभिन्न हिस्से हैं। मनुष्य के जंगल युग से सभ्य होने के साथ से ही हमारा पशुओं का साथ है। वे मित्र हैं और हमारे रक्षक भी हैं।

अगर 2017-18 के आंकड़े देखें तो दूध उत्पादन में भारत प्रथम स्थान पर था। इसका वार्षिक उत्पादन देश में 17 करोड़ 43 लाख टन रहा। संख्या के हिसाब से अंडे का उत्पादन 95 अरब 22 करोड़ रहा और 77 लाख टन मांस का उत्पादन किया गया। पशुधन का आउटपुट मूल्य कृषि और अन्य क्षेत्र की अपेक्षा 31.25 फीसद था। मछली उत्पादन लगभग एक करोड़ छब्बीस लाख मिट्रिक टन का रहा। चमड़े का उत्पादन महत्त्वपूर्ण है। इसका सबसे अधिक निर्यात किया जा रहा है। इसी तरह चार करोड़ पंद्रह लाख किलो ऊन का देश प्रति वर्ष उत्पादन कर रहा है। लेकिन जो पशु धन हमारे साथ है, उसकी गणना से पशुओं के अनुपात से हम आर्थिक उन्नति के एक पहलू को देख पाएंगे।

गणना के आधार पर कुल पशु देश में साढ़े तिरेपन करोड़ हैं। यह गणना देश के छह लाख साठ हजार गांवों और नवासी हजार शहरी वार्डों की है। इसके मुताबिक उन पशुओं की वृद्धि हुई है, जो हर दिन भोजन के लिए उपयोग में लाए जा रहे हैं। जबकि जिन्हें कृषि और अन्य कार्यों में उपयोग में लाया जा रहा है, उनका अनुपात घटता जा रहा है। जिन जानवरों का मांस के लिए उपयोग हो रहा है, उसकी संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। सिर्फ सूअरों के प्रजनन को छोड़ कर, जबकि इसके मांस का भी उपभोग होता है। इसी तरह अंडे और मुर्गी पालन में 2012 की अपेक्षा 2019 में 16.8 फीसद की वृद्धि हुई है। अगर राज्यवार इसका उत्पादन देखें तो बंगाल और आंध्र प्रदेश में 2012 की अपेक्षा इस वर्ष छियालीस और चौंसीस फीसदी की वृद्धि हुई है। भेड़ पालन में भी 2012 के मुकाबले 2019 में आबादी में बढ़ोतरी हुई है। इस समय कुल भेड़ों की संख्या सात करोड़ तैंतालीस लाख है, जबकि 2012 में यह संख्या छह करोड़ इक्यावन लाख थी। यह भी एक आर्थिक आधार है भेड़ पालने वालों का। इसमें 2012 के मुकाबले 2019 में चौदह फीसदी की बढ़ोतरी हुई है। बकरी पालन में भी लोगों ने रुचि दिखाई। इस रुचि का खास कारण है। बकरी पालन मांस के साथ-साथ दूध उत्पादन में सहायक है।

पशुओं के प्रजनन में बहुत सारे राज्यों में कमी पाई गई है। ऊंटों की संख्या में सैंतीस फीसद से अधिक की गिरावट दर्ज हुई है। इसी तरह घोड़े, खच्चर और गधों की संख्या में लगभग बावन फीसद की गिरावट आई। गायों की संख्या में हल्की कमी आई है।

इस पशुधन को पालने के लिए हमें पर्याप्त पानी की आवश्यकता है। यह जरूरी है स्वस्थ पशु जीवन धन को समृद्ध करने के लिए। इसी तरह घास की भी जरूरत होती है। पारिस्थितिकी के हिसाब से सबको स्वस्थ जीवित रहने के लिए हवा, पानी और भोजन आवश्यक है। पालतू पशुओं के लिए चारा बोना आवश्यक है। जंगली घास पर जंगली जानवर तो रह सकते हैं, पर पालतू जानवरों के लिए इस चारे को उगाना पड़ता है। इसके बीज भंडार की भी आवश्यकता होती है। हमारे देश में इनके पालन-पोषण की इतनी बड़ी व्यवस्था नहीं है। जंगलों में जानवरों को चरने के लिए छोड़ा जाता है। उनके जीवित रहने का जंगल ही साधन है। जंगल भी साल भर हरे-भरे नहीं रहते। बारिश के अभाव में तो सूखा पड़ जाता है। मवेशी जगह-जगह पेट भरने के लिए भटकते हैं।

पानी और घास के उत्पादन में इन जानवरों के लिए कितनी अर्थव्यवस्था की जरूरत है, उसका अनुमान भी शायद ही किसी ने किया हो। इस पर अध्ययन की आवश्यकता है। कितनी भूमि इनके लिए सुरक्षित रह पाएगी, वह भी भविष्य का विषय है। इस सबका नियोजन अभी हो जाना चाहिए। इस गणना में हमने पालतू कुत्तों और बिल्लियों को छोड़ रखा है। जबकि वे भी हमारे सहचर्य हैं। इन्हें भी भोजन की जरूरत पड़ती है।

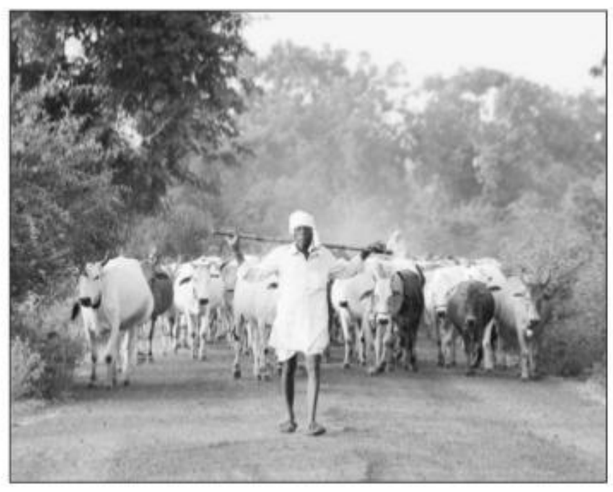

अक्सर देखने में आता है कि देश की राजधानी दिल्ली के महानगरीय जीवन में पशु खुले घूमते हैं। वे सड़कों पर जगह-जगह भटकते हैं। कहीं-कहीं तो ट्रैफिक को बाधित करते हैं। इनके मालिक इन्हें लावारिसों की तरह बाजारों में छोड़ देते हैं और जब दूध लेने की जरूरत होती है, तब घरों में ले जाकर उनसे दूध दूहते हैं। दिल्ली के शहर से जुड़े ग्रामीण इलाकों में इस तरह आवारा गाएं चलती-फिरती रहती हैं। हाल ही उत्तराखंड में यह देखा गया कि गायों को जंगलों में छोड़ दिया गया था, जहां वे जंगली चीतों और बाघों का शिकार हो रही हैं। इसके अलावा, आजकल जंगली जानवर भी खूंखार हो गए हैं। उनके लिए भी जंगलों में भोजन की कमी है, इसलिए वे इंसानों पर झपट रहे हैं। पूरे उत्तराखंड में जंगली सूअरों से लेकर बंदर, भालू खेती-बाड़ी का नुकसान कर रहे हैं। इनका वैज्ञानिक अध्ययन तक नहीं हुआ कि क्यों इनकी प्रवृत्ति इतनी हिंसक हो रही हैं।

मोटी बात यह है कि जंगलों की कटाई-छंटाई सड़कें बनाने के लिए हो रही हैं। जो बचे जंगल हैं, उन पर मशीनें दौड़ रही हैं। यातायात भी ज्यादा हो गया है। इसलिए जंगली जानवर खाने की तलाश में गांवों और कस्बों में घूम रहे हैं। पलायन की मार से जो गांव बचे हैं, वहां पर हिंसक जंगली जानवरों का आतंक हो गया है। खेतीबाड़ी में उत्पादन घट गया है।

कहने का आशय यही है कि बढ़ती शहरी आबादी के घनत्व को थामना आज मुश्किल हो गया है। फिर पशुओं पर किसी का ध्यान नहीं है। जबकि वे हमारे भोजन और रहन-सहन में सहायक हैं। हम अपने बीच पशुपालन में एक संतुलन नहीं बना पा रहे हैं। किसी-किसी क्षेत्र में अतिरिक्त उत्पादन हो रहा है, जिसका हम निर्यात कर सकते हैं। उस पर भी ठोस योजना का अभाव है।

पालतू पशुओं को चारा-पानी उपलबध करा कर उनके स्वास्थ्य को बना कर ही उनकी संतति से लाभ पा सकते हैं। यह एक जीवन चक्र है, इसको नियमित बना कर ही विकास की सही राह पर चला जा सकता है। हाल ही में गौरक्षक अभियान ने ऐसे पशुओं को खुला छोड़ दिया है, जिनका भार संभालना उस मालिक के बस में भी नहीं है जो उसे पाल-पोस, उससे सब कुछ निचोड़ कर खुला छोड़ने में विश्वास रखता है। उन्हीं लोगों की वजह से परेशानियां भी पैदा हो रही हैं। जो अब किसी तरह से किसान के काबिल मवेशी नहीं रहता है, उसका ठिकाना आवारा जीवन ही रह गया है। उस जीवन की देखभाल करने वाला कोई नहीं है। कभी ऐसे जानवरों को 'स्लॉटर हाउस' पहुंचाया जाता था, वहां उनके चमड़े, मांस के उपयोग के अलावा उनकी हड्डियों की खाद बनाई जाती थी जो कृषि उपज में सहायक होता था। उसका उपयोग अब नहीं हो पा रहा है। इसलिए सरकार के पास कोई ठोस नीति होनी चाहिए, जिससे उन जानवरों की जीवन पर्यंत सुरक्षा का भार वह उठाए और जब उनके जीवन का अंत प्राकृतिक रूप से आए, तब उन्हें शांत मृत्यु का रास्ता दे। हमारी पशुओं के साथ न्याय की प्रक्रिया भी सही होनी चाहिए। आखिर वे हमारे पूरक हैं।

खंडित सच के दायरे

निशा नाग

दुनिया मेरे आगे

हाल ही में किसी ने मुझे कहा- 'मालूम है, ये जो मांग चल रही है कि शिक्षा महंगी कर दी है और हम उसे वहन नहीं कर सकते। ये सब फिजूल की बात है। जेएनयू के विद्यार्थी तो महंगी बाइकों पर घूमते हैं और ब्रांडेड कपड़े पहनते हैं। ...मैंने अभी-अभी फेसबुक पर देखा।' यह बात उच्च शिक्षित एक महिला ने मुझसे कही तो चौंकना स्वाभाविक था। दरअसल, सामान्य विद्यार्थियों के साथ जेएनयू में पढ़ने वाले ऐसे विद्यार्थी भी बड़ी संख्या में हैं जो दूरदराज के क्षेत्रों से आते हैं और वे बेहद निम्न आय वर्ग के परिवारों के बच्चे होते हैं। वे अक्सर अपनी पीढ़ी के पहले ऐसे विद्यार्थी होते हैं जो उच्च शिक्षा का सपना पूरा कर रहे होते हैं। मैंने उन्हें ट्यूशन पढ़ा कर भी अपना खर्च चलाते हुए देखा है। और जेएनयू की तो पहचान ही मोटे कपड़े और फक्कड़पने से है। कुछ लोग अगर ब्रांडेड कपड़े पहनते हैं तो उसका सरलीकरण ठीक नहीं। यह धारणा ठीक वैसी ही है कि अगर दिल्ली में कुछ लोगों के पास महंगी फेरारी कार है तो समूची दिल्ली में रहने वालों के पास भी है।

सवाल है कि आभासी संसार के गढ़े गए प्रचार को पढ़े-लिखे और वयस्क लोग सहजता से स्वीकार कर रहे हैं तो उस आम अल्पशिक्षित और अशिक्षित जनता के बारे में क्या कहा जाए जिसे कभी विचार और विश्लेषण करने की क्षमता तक पहुंचने ही नहीं दिया गया। सोशल मीडिया पर 'ऑगमेंटिड रियलिटी' या संवर्धित वास्तविकता पर आज कभी-कभार चर्चा होने लगी है। संवर्द्धित वास्तविकता आभासी संसार की वह प्रतिछवि है जो वास्तविकता को स्वरचित कल्पना में लपेट कर प्रस्तुत करती है और छवियों की वास्तविकता को खत्म कर देती है। दुख को अति दुख और हास को अतिहास में इस तरह प्रतिवर्तित करती है कि वास्तविकता उसके भीतर कहीं दब कर रह जाती है और आम जन उस बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत की गई बात को ही सच मान लेता है। जबकि वास्तविकता का अंश उसमें कहीं बहुत थोड़ा होता है। यानी अपने-अपने राम की तरह अपना-अपना सच यहां भी काम करता है। किन्हीं विशेष परिस्थितियों की तो बात ही छोड़िए, आम घटनाओं पर भी इसका गहरा प्रभाव दिखाई दे रहा है और आम जन इसके घेरे में आते दिखाई दे रहे हैं।

आधुनिक समाज की एक प्रमुख गतिविधि निरंतर नई-नई छवियों को निर्मित करना और उनका उपभोग करते रहना है। धीरे-धीरे वास्तविकता की ये गढ़ी गई छवियां ही वास्तविकता को निर्धारित करने लगती हैं। इन दी हुई छवियों के आधार पर हम वास्तविकता के बारे में अपनी अवधारणाएं बनाने लगते हैं। ये छवियां वास्तविकता को लेकर हमारी जरूरतों का अनुकूलन और नियंत्रण करने लगती हैं। सोशल मीडिया में वास्तविक संसार को प्रतिसंसार में गढ़ने वाली फोटोग्राफी के साथ ही इसका खतरा दिखाई देने लगा था।

सन 1960 में सूजन सौंटेंग की पुस्तक प्रकाशित हुई 'ऑन फोटोग्रॉफी'। इस पुस्तक में उन्होंने यह स्थापित किया कि किसी घटना के बारे में दिखाए गए फोटोग्राफ के बारे में अक्सर कहा जाता है कि वह हजारों शब्दों से भी अधिक प्रभावशाली होता है। जबकि सच्चाई यह है कि 'क्षण में कैद एक चित्र वास्तविकता का एक टुकड़ा हमें देता है। लेकिन वह टुकड़े को संपूर्णता का पर्याय बना देना चाहता है। हम कैमरे की आंख से ही सब कुछ को देखते हैं। कौन इसे दिखा रहा है? कौन इस पूरे दृश्य प्रपंच का सूत्रधार है, इसे अक्सर नहीं जान पाते'।

यही स्थिति आज वायरल होती छवियों दृश्यों और एमएमएस के बारे में है। यह सही है कि सोशल मीडिया ने सूचना का लोकतंत्रीकरण और ज्ञान का सुलभ स्रोत उपलब्ध कराया है, लेकिन इसका दूसरा पहलू भी है जो आज इस समस्त सूचना तंत्र पर हावी होता नजर आ रहा है, जहां सोशल मीडिया में निरंतर गढ़ी जाती ये छवियां सोचने और विचारने की जगह खत्म कर रही हैं। वास्तविकता का अपने लिए अनुकूलन करती ये छवियां कहीं न कहीं वास्तविकता को निरर्थक बना रही हैं। यहां तक कि यह वास्तविकता को एक गल्प में बदल रही हैं। इस तरह की छवियां वास्तविकता के सत्य और सातत्य को खंडित करती हैं। यह अनायास नहीं है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान आम जनता को दिखाने के लिए तानाशाह हिटलर या भारत में ब्रिटिश सरकार ने जो वृत्तचित्र बनाए थे, वह अपना पक्ष जनता के सामने रखने के लिए 'मैनीपुलेशन' यानी तथ्यों को मनमाने तरीके से तोड़ना-मरोड़ना था। उन्होंने उस समय जनता की आंखों में धूल झोंकने के लिए वृत्त-चित्रों और प्रोपेगेंडा का सहारा लिया।

आभासी छवियों के इस संसार में वस्तु की छवि जब तैयार होती है तो वह जैसे उस वस्तु को अपने नियंत्रण में कर लेना चाहती है और वह छवि ही वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करने लगती है। प्रश्न यह उठता है कि कहीं हमारे समाज का यह ऑनलाइन प्रतिबिंब, जो अक्सर तात्कालिक प्रतिछवियों द्वारा निर्मित होता है, हमें इतना प्रभावित तो नहीं कर लेगा कि विचार-विमर्श किए बिना हम इस पर विश्वास करने लगेंगे और यह समांतर आभासी दुनिया ही हमें संचालित करने लगेगी!

मेहनताने का हक

मजदूर अधिनियम 2019 पर श्रम संहिता और मसौदा नियमों ने क्या भारत में पचास करोड़ से अधिक अनौपचारिक श्रमिकों के जीवन और आकांक्षाओं को विफल कर दिया है? संगठित क्षेत्रों में जिस तरह बैंक, स्कूल, बीमा जैसे संस्थानों में जो लोग श्रम कार्य में लगे हुए हैं, उन्हें समय पर वेतन मिलता है, बीमा जैसी सुविधाओं का लाभ मिल जाता है। वहीं असंगठित क्षेत्रों में वेतन-भत्ते, बीमा और कब काम पर जाना है, कब नहीं, कुछ निश्चित नहीं है। असंगठित क्षेत्र के मजदूर वर्ग के बच्चों के लिए सुविधाओं का घोर अभाव है। अधिकतम समस्या असंगठित क्षेत्र में है। इसमें तिरानबे फीसद जो कार्यशील जनसंख्या है, वह साठ फीसद सकल घरेलू उत्पादन में योगदान देता है।

सन 1991 में निर्वाह मजदूरी अधिकार की अवधारणा सामने आई, लेकिन वर्तमान में विकासशील देशों में भी मजदूर वर्ग न्यूनतम आय से भी अभी बहुत दूर है। 1947 से अब तक वर्तमान परिस्थितियों में भी हालत वही बनी हुई है। उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण के हिसाब से अभी भी ग्रामीण क्षेत्र में वर्तमान में तिरासी रुपए प्रतिदिन और शहरी क्षेत्र में एक सौ चौंतीस रुपए प्रतिदिन के हिसाब से मिल रहा है। वहीं दिल्ली में यह न्यूनतम वेतन 14,842 प्रतिमाह है और केरल में यह छह सौ रुपए प्रतिदिन। इन राज्यों की स्थिति बेहतर है।

सही है कि इस अधिनियम से कुछ फायदे भी समाज में होंगे। इस अधिनियम के जरिए लैंगिक आधार पर एक समान कार्य या एक प्रकृति वाले काम के लिए वेतन और भर्ती के मामले में लैंगिक भेदभाव को खत्म कर दिया गया है। अब एक जैसे काम के लिए महिलाओं को भी उतना ही वेतन मिलेगा, जितना एक पुरुष को दिया जाता है। मजदूर अधिनियम 2019 में वेतन वर्तमान में 9750 रुपए महीने, वहीं 375 रुपए प्रतिदिन कर दिया गया है। इसमें शहरी क्षेत्र में आवासीय भत्ता 1430 रुपए न्यूनतम है। श्रम सुधारों की दिशा में यह एक बहुत बड़ा कदम है। श्रमिक वर्ग खुश रहेगा, तभी अर्थव्यवस्था आगे बढ़ेगी।

● *करन कुमार खोईया, दिल्ली विवि*

अनुशासन की कसौटी

राजनीति में अनुशासन की बात की जाए तो देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि 'अनुशासन राष्ट्र का जीवन-रक्त है।' सच पूछा जाए तो अनुशासन ही मानव सभ्यता के विकास की पहली सीढ़ी है, जिसके सहारे हमारा क्रमिक विकास संभव हुआ है। प्रकृति के समस्त कार्य-व्यापार किसी न किसी नियम से बंधे होते हैं। पृथ्वी नित्य नियम से अपनी धुरी पर घूमती है। जाड़ा, गरमी और बरसात हमेशा समय पर आते हैं। लेकिन अब यहां यह कहना उचित होगा कि देश में अनुशासन का पालन करने को विचित्र निगाहों से देखा जाने लगा है।

खासतौर पर हमारे देश की राजनीति का स्तर इस हद तक गिर चुका है कि यहां अनुशासन तो किसी कोने में दुबका नजर आता है। अगर यहां अनुशासन होता तो आज देश की राजनीति और राजनेता अवसरवाद के शिकार न होते और न ही बेतुकी बयानबाजी सत्ताधारियों और राजनेताओं से सुनने को मिलती। सरकारों को देशहित और जनहित के लिए कड़वे और कठोर फैसले जरूर लेने चाहिए। हालांकि सरकारों को ऐसे फैसले लेने से गुरेज करना चाहिए, जिससे देश को आर्थिक नुकसान हो या वह आमजन के लिए परेशानी बने। लोकतंत्र में जहां प्रधानमंत्री देश के नागरिकों के मतदान द्वारा चुना जाता है। वहीं अगर लोगों से किसी खास और मजबूरी वाले अनुशासन की अपेक्षा रखी जाती हो, तो वास्तव में उसे किसी न किसी रूप में लोकतंत्र पर आसन्न खतरे का संकेत समझा जा सकता है।

● *राजेश कुमार चौहान, जालंधर*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

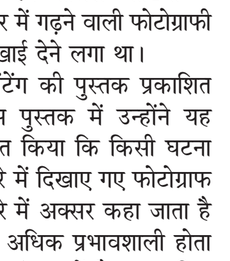

आदर्श गांधी

हाल ही में एक सांसद प्रज्ञा ठाकुर द्वारा गांधीजी की हत्या को लेकर संवेदनशील और नकारात्मक बयान के चलते राजनाथ सिंह ने संसद में कहा कि महात्मा गांधीजी हमारे लिए आदर्श हैं। वे हमारे प्रेरणास्रोत हैं और हमेशा रहेंगे। अब प्रज्ञा ठाकुर ने भले ही माफी मांग ली हो, लेकिन यह देश के लिए खेद की बात हैं जिस महान व्यक्ति के स्मारक और मूर्तियां दुनिया के देशों में सम्मान के साथ बनाए जाते हैं, ताकि उनके आदर्श तत्त्वों और मूल्यों को उनके देश के भलाई के लिए अपनाया जा सके, वहीं अपने ही देश में गांधीजी के नाम पर विवाद उत्पन्न किया जा रहा है, जो निंदनीय है। गांधीजी को दुनिया में इसीलिए माना और याद किया जाता है कि वे अहिंसा, आत्मबल, संयम, उपवास, विश्वास, धैर्य, आत्मविश्वास, निष्ठा, कर्तव्य, सादगी आदि गुणों को आत्मसात करके अपने जीवन को व्यतीत करते रहे। इसलिए देश ही नहीं, बल्कि दुनिया के सामने उनकी सोच और जीवनशैली आदर्श मानी जाती है। यह दुर्भाग्य है कि देश में गांधीजी की मृत्यु स्वाभाविक नहीं हुई, बल्कि नाथूराम गोडसे ने उनकी हत्या कर दी। उसी हत्यारे को देशभक्त कहा जा रहा है।

गांधीजी ने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, पर्यावरण आदि अनेक पहलू पर अपने विचार प्रकट किए, जिन्हें वास्तव में जमीन पर उतारने के लिए देश को प्रयास करना जरूरी है। देश में कुछ नेता और लोग अन्य नेताओं, क्रांतिकारियों, समाजसेवकों के विचार गांधीवादी विचारधारा से श्रेष्ठ मानते हैं, लेकिन किसकी विचारधारा श्रेष्ठ बताने के बजाय खुद के लिए और देश के कल्याण के लिए उन सभी अच्छी विचारधाराओं में से अच्छी और मानवीय बातें चुन कर लागू करना चाहिए।

● *निशांत महेश त्रिपाठी, कोंढाली, नागपुर*

राजनीति की दिशा

राजनीति को सीधे सरल रूप में परिभाषित करना हो तो यह वह व्यवस्था है, जो समाज को दिशा देने के साथ ही उसकी समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त करती है। आज राजनीति दिशाहीन होती जा रही है और नेता अवसरवादी। एक कहावत काफी प्रचलित है कि दुश्मन का दुश्मन अपना दोस्त हो सकता है। कोई बात जमी नहीं कि पार्टी बदली, क्योंकि दूसरा दल उसे लेने को तैयार खड़ा है। एक समय टिकट के दावेदार कम हुआ करते थे, मगर अब लाइन लगा कर खड़े रहते हैं। पार्टी बदलना और नई पार्टी बनाना तो खेल बन गया है।

● *साजिद अली, चंदन नगर, इंदौर*

नई दिल्ली

www.readwhere.com